29

मृतात्मा से संपर्क

अब मैं अपने जीवन का एक ऐसा विलक्षण अनुभव लिख रहा हूँ जैसा जीवन में किसी-किसीको ही उपलब्ध हो पाता है। उसका विषय सदा से विवादास्पद रहा है। वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक जगत आज भी उस विषय की सत्यता स्वीकार नहीं करता। मैं भी जब उस तरह की बातें पहले किसीके मुँह से सुनता था तो उन्हें पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पाता था। परंतु जब से यह अनुभव मैंने स्वयं किया है, मुझे उसकी वास्तविकता में कोई संदेह नहीं रह गया है।

बात सन 1976 की है। मैं अपनी ससुराल प्रतापगढ़ में था। वहाँ पं. सीताराम चतुर्वेदी किसी कार्यवश पधारे थे। मैंने उनके स्वागतार्थ अपनी धर्मशाला में संध्या 6 बजे एक कविगोष्ठी आयोजित की थी। चतुर्वेदीजी हमारे घर से प्रायः एक फर्लांग दूर अपने संबंधी प्रतापगढ़ डिग्री कालेज के प्राचार्य आशुतोषजी के घर पर ठहरे थे। चतुर्वेदीजी की भतीजी आशुतोषजी के छोटे भाई को ब्याही थी इसलिए उनका आपस में समधियाने का संबंध था। गोष्ठी का समय होता देखकर मैं स्वयं चतुर्वेदीजी को आशुतोषजी के घर से लिवा लाने को निकला। अभी मैं उनके आवास से प्रायः तीस-चालीस गज दूर था कि उनका नौकर दौड़ता हुआ आया और मुझसे बोला, 'चलिए, प्रिंसिपल साहब बुलाते हैं।' मैंने सोचा कि मुझे दूर से आता हुआ देखकर प्रिंसिपल साहब ने इस नौकर को भेज दिया है। मुझे उनके घर का बाहरी भाग लाँघकर आँगन के अंदर एक कोठरी में ले जाया गया जहाँ आशुतोषजी, आशुतोषजी की पत्नी क्षमा देवी, उनकी 7-8 वर्ष की बालिका तथा चतुर्वेदीजी बैठे थे। मेरे अंदर घुसते ही किवाड़ बंद कर दिये गये। चतुर्वेदीजी ने मुझसे कहा कि नारायण स्वामी आये हैं। यहाँ नारायण स्वामी का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है। नारायण स्वामी चतुर्वेदीजी के छोटे भाई थे जो बचपन में ही संन्यासी हो कर नारायण स्वामी के नाम से विख्यात हो गये थे। वे अद्भुत चरित्रवाले मस्तमौला तांत्रिक संन्यासी थे जिनके हजारों शिष्य सारे भारत में बिखरे पड़े थे। उनके शिष्यों का विश्वास था कि स्वामीजी को अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हैं और वे चाहें तो उन्हें

मालामाल कर दे सकते हैं। कोलकाता के कितने ही धनाढ्य व्यापारी भी उनके शिष्य-वर्ग में थे। वहाँ के करनानी-भवन में स्वामीजी के लिए एक बड़ा फ्लैट किराये पर लिया हुआ था जहाँ वे कोलकाता आने पर ठहरा करते थे। मैं भी उस फ्लैट में दो-तीन बार चतुर्वेदीजी के साथ उनसे मिल चुका था और उनका मस्तमौला स्वभाव अपनी आँखों से देख चुका था। वे किसी प्रकार की औपचारिकता या संन्यासियों की-सी महत्ता का आवरण ओढ़े रहने में विश्वास नहीं करते थे। बोलने में मुँहफट तो थे ही, आचरण में भी किसी प्रकार का सामाजिक दिखावा या आडंबर उन्हें स्वीकार नहीं था। अपने बड़े भाई चतुर्वेदीजी को वे पंडित के नाम से संबोधित करते थे। चतुर्वेदीजी के चीनी मिट्टी के प्याले में चाय न पीने जैसी आदतों की वे हँसी उड़ाते थे और शायद खान-पान की कट्टरता के कारण ही उन्होंने चतुर्वेदीजी को पंडित के नाम से पुकारना प्रारंभ किया था। नारायण स्वामी को जब भी मैंने देखा, भक्तों से घिरे हुए ही देखा। उनका रोजमर्रा का खर्च भी किसी राजा-महाराजा के खर्च से कम नहीं था। प्रथम दृष्टि में ही उनकी विलक्षणता दृष्टिगोचर हो जाती थी। वे किसी आसन या मृगछाला के बजाय एक असाधारण रूप से बड़े पलंग पर मसनद के सहारे बैठे रहते थे जब कि भक्तों की भीड़ सोफे और कुर्सियों पर उनके सामने बैठी रहती थी। कोलकाता में मैंने सदा इसी रूप में उन्हें देखा था। आगत सज्जनों का सत्कार वे चाय, कोकोकोला आदि संन्यासियों के लिए अपरंपरागत पेय पदार्थों से करते थे। हम लोगों के लिए जब-जब उन्होंने अभीप्सित पेय मँगवाया तो चतुर्वेदजी के लिए चाँदी के गिलास में चाय लाने का आदेश दिया। उनके पास भक्तों की भीड़ में बैठी एक महिला ने मुझे नारायण स्वामी की अनुपस्थिति में उनके चमत्कार की एक आपबीती सुनायी थी जिसे मनोरंजनार्थ ज्यों-का-त्यों यहाँ दे रहा हूँ। स्वामीजी जब कोलकाता आते तो उनके दरबार में वह कई वर्षों से हाजिरी दिया करती थी। उसका पुत्र किसी छापेखाने में नौकरी करता था। एक बार कोलकाता में एक छापाखाना बिकाऊ था जिसका मूल्य छियालीस हजार रुपये था। उसने स्वामीजी से याचना की कि यदि वह अपने धनिक शिष्यों में से किसीसे यह राशि दिलवा दें तो उसका पुत्र उस छापाखाने को खरीद ले और उसकी दरिद्रता मिट जाय। स्वामीजी ने एक उपेक्षित कालीमंदिर में रात के समय जाने का उसे आदेश दिया तथा कहा कि वहाँ से जो महिला निकलती दिखाई दे, उसका पीछा करे एवं वह जो कहे उस पर आचरण करे। मुझे उस महिला की गाथा सिंहासनबत्तीसी या बैतालपच्चीसी की कहानी जैसी लग रही

थी। वह महिला दूसरे दिन रात के समय जब उस मंदिर में पहुँची तो कुछ समय बाद उसे वहाँ से एक स्त्री निकलती दिखाई दी जिसका उसने स्वामीजी के आदेशानुसार पीछा किया। जब वह स्त्री बहुत सी गलियों में जाने के बाद अपने घर की सीढ़ी पर चढ़ने लगी तो इसे पीछे आते देखकर उसने फटकारा। स्वामीजी के आदेश की बात सुन कर वह हँसी और उसने एक विशेष अंक बताया। उस महिला ने अपने पुत्र से कोलकाता में उन दिनों होनेवाले आखर के सौदे पर उस अंक-विशेष पर दाँव लगाने को कहा। आखर के सौदे में लोग 1 से 10 तक के अंकों पर रुपये लगाते हैं। दूसरे दिन सुबह मे न्यूयार्क में खुलनेवाले रूई के भाव के अंतिम अंक से यदि उनका अंक मिल जाता है तो उन्हें अपने रुपयों के कई गुना रुपये मिल जाते हैं अन्यथा लगाये हुए रुपयों की राशि जब्त हो जाती है। यह एक प्रकार का जूआ ही है। उसने विश्वासपूर्वक वैसा ही किया और जितने रुपये नकद उसके पास थे उस अंक पर लगा दिये। दूसरे दिन वह अंक सही निकला और उसे छियालीस हजार रुपये प्राप्त हो गये जिनसे उसने वह प्रेस खरीद लिया और उसका पुत्र उसे चलाने लगा। आगे उस महिला ने मुझे बताया कि मैं कितनी बड़ी मूर्ख हूँ कि मैंने उतने ही रुपयों को पाने की स्वामीजी से याचना की जितने से प्रेस खरीदी जा सकती थी। मुझे यह भी सोचना चाहिए था कि उसे व्यवसाय के रूप में सफलता से संचालित करने को और पूँजी भी तो चाहिए थी। प्रेस की कीमत से दस, पंद्रह हजार रुपये अधिक की स्वामीजी से याचना करनी थी। नारायण स्वामी के इस प्रकार के चमत्कार के और भी उदाहरण होंगे क्योंकि जो बड़े-बड़े धनाढ्य सेठ उन्हें घेरे रहते थे वे विशुद्ध भक्ति से ही प्रेरित थे, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उनमें से अधिकांश अपने सौदे-सट्टे में स्वामीजी की सिद्धि का लाभ उठाने की आशा रखते थे और इसी लिए शायद उन पर पानी की तरह पैसे बहाते थे। व्यापारी बहुत चतुर होता है। वह चार रुपये पाने की प्रत्याशा में ही एक रुपया लगाता है। जो भी हो, मुझे स्वामीजी की बातों में बहुत रस आता था। स्वामीजी की विद्या भी अगाध थी। उनके भक्तों में बी. आई. सी. के चेयरमैन तथा अनेक चाय-बगानों के स्वामी एक अति धनाढ्य उद्योगपति चिंरजीलाल बाजोरिया ने उनसे एक बार कह दिया कि स्वामीजी, संस्कृत तो भक्ति और भगवत्प्रार्थना की भाषा है। मैं तो उर्दू की रोमांटिक कविताओं का प्रेमी हूँ। इस बात का खंडन करने के लिए स्वामीजी ने **सूक्ति-सागर** नामक एक विशाल ग्रंथ तैयार कर डाला। इस ग्रंथ में देवताओं की भक्ति के साथ-साथ संस्कृत की शृंगार रस की हजारों

रचनाएँ संकलित हैं। मेरे पास उसकी एक छपी हुई प्रति है और उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि संयोग, वियोग, मिलन, परिरंभन, चुंबन, रति, आदि प्रकरणों का वर्गीकरण करके उस ग्रंथ में शृंगाररस की जितनी अधिक सामग्री जुटायी गयी है वह एक व्यक्ति तो क्या, एक संस्था के भी बस की बात नहीं है। उस ग्रंथ के प्रारंभ में स्वामीजी ने लिखा है, 'चिरंजीलाल बाजोरिया के उर्दू-प्रेम को संस्कृत-प्रेम में बदलने के लिए मैंने इस ग्रंथ की रचना की है।' इसके साथ ही तंत्रशास्त्र के एक दुर्लभ अप्राप्य ग्रंथ की छपी हुई प्रति भी मैंने उनके पास देखी जिसके विषय में उन्होंने बताया कि बड़ी कठिनाई से सारे भारत की खाक छानकर उस ग्रंथ का वे उद्धार कर पाये हैं। मुजफ्फरनगर के उनके पैतृक निवास में करीब 40 बड़ी लोहे की आल्मारियों में स्वामीजी के द्वारा संगृहीत संस्कृत-ग्रंथों का अमूल्य भंडार मैंने स्वयं देखा है। स्वामीजी की हर बात में विनोद और अक्खड़पन रहता था जो उनके आडंबर-रहित विलक्षण व्यक्तित्व का परिचय देता था। उनकी मृत्यु की घटना भी विचित्र है। दिल्ली में उनकी एक भक्त डाक्टरनी ने उनके रक्तचाप की जाँच करके हाई ब्लड प्रेशर बताते हुए उन्हें दो-तीन दिन वहीं आराम करने की सलाह दी और अत्यंत रूखा, घी-तेल से रहित भोजन खाने को बताया। उन्होने उसी दिन हवाई जहाज की टिकट कटाकर अपने सेवक मूलजी के साथ कोलकाता प्रस्थान कर दिया। डाक्टरनी फिर संध्या समय उन्हें देखने को आनेवाली थी परंतु उसके आने के पूर्व ही उन्होंने दिल्ली छोड़ दी और अपने सेवक को अपने भोजन में घी की मात्रा दुगुनी कर देने का आदेश दे दिया। कलकत्ता आने के तीन-चार दिन बाद ही उन पर पक्षाघात का आक्रमण हुआ और वे कोमा (बेहोशी) में चले गये। मैं भी संयोग से उस समय कोलकाता पहुँचा हुआ था। सूचना पाते ही मैं उन्हें देखने बाँगड़ हास्पिटल गया जहाँ उनके बड़े भाई सीताराम चतुर्वेदी भी बीमारी का समाचार पाकर पहले से आ गये थे और उनके सिरहाने बैठे थे। भक्तों द्वारा लाखों रुपये चिकित्सा में खर्च करने पर भी स्वामीजी को नहीं बचाया जा सका और दो-तीन दिन बेहोश रह कर उन्होंने शरीर त्याग दिया। मैं तो उनकी मृत्यु के उपरांत उनके मृत शरीर के चरण-स्पर्श कर के लौट आया परंतु सैंकड़ों भक्तों ने बड़ी धूमधाम से गाजेबाजे के साथ प्रस्तर-पेटिका में बैठाकर हुगली नदी में स्वामीजी के पार्थिव शरीर का अंतिम संस्कार किया। इसलिए जब चतुर्वेदीजी ने मुझसे कहा कि नारायण स्वामी आये हैं तो मैं भौंचक्का रह गया। चतुर्वेदीजी ने मुझे चकित देखकर कहा, 'स्वामीजी ने ही तो कहा कि गुलाब आ

रहे हैं, उन्हें अंदर बुला भेजो। हमें तुम्हारे आने का क्या पता था? हम लोग घर के अंदर के कक्ष में बंद होकर बैठे हुए दूर सड़क पर तुम्हें इधर आते हुए कैसे देख सकते थे! अब तुम स्वामीजी से कुछ पूछो।' मैं तो सकते में था। पहले एक बार प्लैंचेट से मृतात्मा के संपर्क का दो घंटे तक साक्षी रहकर भी मैं पूरी तरह अपना विश्वास स्थिर नहीं कर पाया था क्योंकि मैं उसमें केवल दर्शक था। प्लैंचेट पर दूसरों का हाथ था। मुझे चुप देखकर चतुर्वेदीजी ने ही स्वामीजी से पूछा 'गुलाब कहाँ से आ रहे हैं ?' प्रिंसिपल साहब की लड़की, जो माध्यम थी और कागज पर कलम से बड़ी तेजी से उत्तर लिख रही थी, उसने लिखा 'ससुराल से'। इस उत्तर को लिखकर वह लड़की हँसने लगी। उसने समझा, स्वामीजी विनोद कर रहे हैं। परंतु बात तो सही थी। मैं ससुराल में ही तो था और वहीं से तो आ रहा था। अब मुझे थोड़ा साहस हुआ और मैंने पूछा कि संन्यास लेने के पूर्व आपका घर का क्या नाम था। उत्तर आया 'पंडत ने मेरी जीवनी छपाई है, उसमें देख लो।' स्वामीजी 'पंडित' शब्द का उच्चारण भी पंजाबी लहजे में 'पंडत' ही करते थे। यह बात सही थी। चतुर्वेदीजी ने स्वामीजी के भक्तों के लिए उनकी जीवनी प्रकाशित की थी। उससे यह जानकारी मिल सकती थी। मैंने और भी कई प्रश्न किये जिनका उत्तर उन्होंने उसी लहजे में दिया जिस लहजे में वे जीवनकाल में बातें करते थे। परलोक संबंधी किसी जानकारी को पाने के लिए किये गये प्रश्नों के उत्तर वे यह कह कर टाल देते थे कि अभी तुम्हारी उम्र यह सब जानने की नहीं है। हम लोग कोठरी के अंदर किवाड़ उढ़काकर बैठे थे और स्वामीजी से प्रश्न कर रहे थे। सहसा बाहर से किसी बच्ची के रोने की आवाज आयी। स्वामीजी से जब यह प्रश्न किया गया कि कौन रो रहा है और क्यों रो रहा है तो उन्होंने बच्ची का नाम बताया और रोने का कारण लिखाया, 'टीका।' बच्ची का नाम तो दूसरा था परंतु उसके रोने का कारण हाथ में लगे हुए चेचक के टीके से होनेवाली पीड़ा थी। वह प्रिंसिपल साहब की दाई की लड़की थी। बाद में उक्त दाई से जब स्वामीजी को बताये हुए नाम के संबंध में पूछा गया तो उसने कहा कि बच्ची का घर का असली नाम वही है जो स्वामीजी ने बताया है। उसने पहले जो नाम बताया था वह उसका पुकारू नाम था।

प्रतापगढ़ में गाजी की दुकान का आलूचाप मशहूर है। स्वामीजी से पूछा गया कि क्या आलूचाप खायेंगे तो उन्होंने लिखाया, 'मँगाओ, जरूर खाऊँगा।' सायकिल से प्रिंसिपल साहब का नौकर जब चाप लेकर लौटा तो प्रिंसिपल साहब

की पत्नी क्षमाजी हाथ धोने की नीयत से उठने लगी। स्वामीजी ने तुरत लिखाया कि उठने की जरूरत नहीं है। तुम्हारे हाथ शुद्ध हैं, उन्हें धोने की आवश्यकता नहीं है। मैंने पा लिया, अब तुम लोग प्रसाद ग्रहण करो।' क्षमाजी स्वामीजी को प्रसाद अर्पित करने के लिए हाथ धोने जा रही थी। यह बात उनकी अल्पवय पुत्री कैसे जान सकती थी। प्रेतात्मा इंद्रियाँ न रहने से भावना से ही किसी वस्तु को ग्रहण कर सकती है। जब हम भावना करते हैं कि यह प्रसाद वह ग्रहण करे तभी वह उसका उपभोग कर पाती है अन्यथा कितनी भी वस्तुएँ पड़ी रहें, वह उनके पास से निकल भी जायगी पर उन्हें पा नहीं सकेगी। इसीलिए हिंदू श्राद्ध-पद्धति में इसी प्रणाली का प्रयोग करके मृतात्माओं को उनकी इच्छित वस्तु भेंट की जाती है। इससे संबंधित एक घटना मुझे मेरे मित्र पांडे नर्बदेश्वरसहाय ऐडवोकेट ने सुनायी थी जिसके साक्षी वे स्वयं रहे थे। एक बार पटना जिले के बाढ़ नामक गाँव में एक मैट्रिकुलेशन का विद्यार्थी सायकिल से जाते समय एकाएक गिरकर बेहोश हो गया। उसे पटना अस्पताल में भरती कर दिया गया। रात में बारह बजे एकाएक वह होश में आ गया और शुद्ध अंग्रेजी में धाराप्रवाह बोलने लगा। अस्पताल में खलबली मच गयी और डाक्टरों ने उसे घेर लिया। उनके प्रश्नों के उत्तर में उस बालक के मुँह से शुद्ध अंग्रेजी में उसे बेहोश करनेवाली प्रेतात्मा ने बताया कि वह एक जर्मन महिला है जो प्रथम विश्वयुद्ध में मृत अपने पति को बहुत दिनों से ढूँढ रही थी। उसके मृत पति ने इस विद्यार्थी के रूप में जन्म ग्रहण कर लिया है। ठीक आधे घंटे तक बातें करने के बाद वह आत्मा, जो उस विद्यार्थी के माध्यम से बोल रही थी, चली गयी और वह विद्यार्थी पुनः बेहोश हो गया। वह जाते समय कहती गयी कि वह नित्य रात के बारह बजे आया करेगी। यह क्रम कई दिनों तक चलता रहा। वह आत्मा ठीक रात के बारह बजे आती थी और आधे घंटे से अधिक नहीं ठहरती थी। पटना नगर में इस घटना की चर्चा फैल गयी और पांडे नर्बदेश्वर सहाय के साथ उस आत्मा के आने के समय पर कविवर दिनकरजी, हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमंत्री छविनाथ पांडे आदि भी एक रात यह असाधारण घटना देखने अस्पताल में जा पहुँचे। दिनकरजी अपने एक नव-निर्मित काव्य-ग्रंथ की पांडुलिपि साथ में ले गये थे। जैसे ही उस बालक के कक्ष में इन लोगों ने प्रवेश किया वह अंग्रेजी में बोला, 'देखिए, एक प्रथम कोटि का कवि एक तृतीय कोटि की रचना लिए आया है।' दिनकरजी ने कविता-पुस्तक की पांडुलिपि ले जाने की बात किसीको भी नहीं बतायी थी। आश्चर्य और प्रेतात्मा संबंधी विश्वास

दिलाने की दूसरी बात थी, उस विद्यार्थी का शुद्ध अंग्रेजी में धाराप्रवाह बोलना जिस भाषा का ज्ञान उसे बहुत कम था। फिर तो दिनकरजी और पांडेजी आदि की मंडली कई बार उस बालक में आनेवाली प्रेतात्मा, उस जर्मन महिला से बातें करने अस्पताल में रात के 12 बजे पहुँचती रही। पांडे नर्बदेश्वर सहाय के प्रश्नों के उत्तर में उसने बताया कि हिंदुओं की आत्माएं बड़ी भाग्यशालिनी हैं क्योंकि उन्हें उनके पुत्र-पौत्रादि श्राद्ध में भावना द्वारा जो वस्तुएं अर्पित करते हैं, केवल उन्हीका वे उपभोग कर पाती हैं। आत्माओं की वासनाएं समाप्त नहीं होतीं। परंतु इंद्रियों के अभाव में वे उनकी पूर्ति नहीं कर पातीं। नदी के प्रवाह पर से गुजरने के बाद भी वे प्यासी रहती हैं और तब तक जल नहीं पी सकतीं जब तक कोई भावना द्वारा उन्हें जलांजलि नहीं दे। दिनकरजी की प्रसिद्ध रचना ऊर्वशी को पढ़ते समय मुझे कई स्थानों पर बोध हुआ कि उन्होंने आत्मा से पाये हुए इस ज्ञान का उपयोग उस कृति में भी किया है। इस घटना का वर्णन मैंने भावना का महत्त्व बताने के लिए यहाँ किया है। नारायण स्वामी से मैंने परलोक-संबंधी बहुत से प्रश्न किए जिनको उन्होंने यह कह कर टाल दिया कि अभी तुम्हारी अवस्था ये बातें जानने की नहीं हैं, परंतु मेरे दो प्रश्नों का उन्होंने जो उत्तर दिया उससे भी भावना द्वारा आत्मा को वस्तुओं का उपयोग कराने की बात पुष्ट होती है। मेरे यह पूछने पर कि क्या मुझे अपने पिता का गया-श्राद्ध करना चाहिए उन्होंने लिखाया 'जरूर करो।' मेरा दूसरा प्रश्न था कि मैंने हिंदी में जो ग़ज़लों का प्रयोग किया है उसे बेढबजी की आत्मा तक कैसे पहुँचा सकता हूँ। इसके उत्तर में स्वामीजी ने बताया कि बेढबजी का मन में ध्यान करते हुए ग़ज़लों को पढ़ो, वे उनकी आत्मा तक पहुँच जायँगी। स्वामीजी ने यह जानकारी भी दी कि बेढबजी बहुत ऊँचे लोक में है। इससे यह भी पता चलता है कि आत्माओं की भी श्रेणियाँ हैं और अपने गुणों के अनुसार वे ऊँचे-नीचे लोकों में तब तक निवास करती हैं जब तक उनका पुनर्जन्म नहीं हो जाता। चतुर्वेदीजी ने स्वामीजी की आत्मा से यह जानने का कई बार प्रयास किया कि उन्होंने धनराशि कहाँ संचित कर रक्खी है, उसका पता उन्हें दें क्योंकि स्वामीजी के राजशाही खर्च से यह सहज ही अनुमान होता था कि धनाढ्य शिष्यों द्वारा उनका व्यय वहन करने के बावजूद उनके पास अपने उपयोग के लिए कोई बड़ी धनराशि अलग से भी अवश्य होगी। स्वामीजी ने उत्तर में केवल यही कहा कि प्रयत्न करो और ढूँढते रहो, पा जाओगे।

चतुर्वेदीजी के चले जाने के बाद भी स्वामीजी की आत्मा से प्रिंसिपल साहब के घर पर मैंने बहुत बार संपर्क किया। इन अवसरों पर मैं, प्रिंसिपल साहब,

प्रिंसिपल साहब की 8-9 वर्ष की पुत्री जो माध्यम बनकर कागज पर लिखती थी तथा प्रिंसिपल साहब की पत्नी क्षमा देवी, केवल चार व्यक्ति रहते थे। यह क्रम कई वर्षों तक चला। प्रिंसिपल साहब को प्रारंभ में आत्माओं पर विश्वास नहीं था परंतु प्रत्यक्ष के आगे शंका की गुंजाइश कहाँ रहती है! उन्होंने स्वामीजी से निरंतर होनेवाले वार्तालाप को लिपिबद्ध करना प्रारंभ किया परंतु स्वामीजी के आदेश पर उसे नष्ट कर देना पड़ा। स्वामीजी ने कह रक्खा था कि वे संध्या के चार बजे सुगमता से आ सकते हैं और हम उसी समय उन्हें बुलाया करते थे। उन्होंने बताया कि वे काशीक्षेत्र में निवास करते हैं। एक बार लंबी बैठक के बाद मैंने कहा कि मैं कल भी आपसे मिलना चाहता हूँ तो उन्होंने अपनी विशिष्ट विनोदपूर्ण शैली में कहा 'जरूर पधारिए, स्वागत है।' एक बार मैंने उनसे अपनी सास के पाँव की हड्डी टूटने के संबंध में प्रश्न किया कि वह कब तक ठीक होगी। मेरी सास के पाँव की हड्डी मकरसंक्रांति के दिन एकाएक खड़े होते समय टूट गयीं थी जिसके कारण वे शय्याग्रस्त थीं और चलने-फिरने में असमर्थ थीं। डाक्टरों ने वृद्धावस्था के कारण हड्डी जोड़ने का इलाज न करके केवल पट्टी बाँध रक्खी थी। उस समय मुझको आज की-सी इस विषय की जानकारी होती तो मैं आपरेशन करा के उसे ठीक करा देता परंतु उस समय तो प्रतापगढ़ के डाक्टरों की राय पर ही चलना था जिन्होंने आपरेशन करने की सलाह नहीं दी। मैंने स्वामीजी से जब पूछा कि मेरी सास के पाँव की हड्डी कब तक ठीक हो जायगी और ठीक होगी भी कि नहीं तो उन्होंने कहा कि एक वर्ष में ठीक हो जायगी। यह उत्तर वैसा ही द्व्यर्थक था जैसा मैकवेथ नाटक में शेक्सपियर ने अपनी डाइनों से दिलवाया था। एक वर्ष की अवधि समाप्त होने के कुछ दिन पूर्व ही मेरी सास स्वर्ग सिधार गयी और एक प्रकार से उनका कष्ट समाप्त हो गया। मैंने एक बार स्वामीजी को अपनी नव-प्रकाशित पुस्तक **अहल्या** भेंट की। उन्होंने लिखवाया 'पढ़कर सुनाओ।' मैंने उसके दो तीन छंद पढ़े तो उन्होंने कागज पर 'साधु, 'साधु', लिखवाया। वे संन्यासी थे और संस्कृत के प्रगाढ़ विद्वान थे। 'वाह-वाह' के स्थान पर 'साधु, 'साधु', कहा जाता है, यह प्रिंसिपल साहब की पुत्री सोच भी नहीं सकती थी। जो उत्तर वह स्वामीजी की ओर से लिखती थी उसमें समय-समय पर स्वामीजी के उसी अक्खड़, विनोदपूर्ण और मस्तमौला स्वभाव की झलक मिलती थी जो उनकी विशेषता थी। अंग्रेजी में कहावत है - **style is the Man.** अर्थात् किसी व्यक्ति की लेखनशैली द्वारा उसके पूरे व्यक्तित्व का परिचय मिल जाता है। हम लोगों के प्रश्नों के जो उत्तर

स्वामीजी उस बालिका द्वारा लिखवाते थे, उनसे उनके पूरे व्यक्तित्व की झलक मिल जाती थी। प्रश्नों का उस प्रकार से उत्तर वे ही दे सकते थे। कोई अन्य व्यक्ति उसकी नकल नहीं कर सकता था। फिर प्रिंसिपल साहब की पुत्री तो एक छोटी-सी बालिका थी जिसने उन्हें देखा भी नहीं था। जब 'मैं कहाँ से आया हूँ' प्रश्न के उत्तर मे मेरे ससुराल से आने की बात उसने लिखी तो वह स्वयं इसे मजाक समझकर से हँसने लगी थी। परंतु मैंने जब बताया कि स्वामीजी ठीक कह रहे हैं तो वह चकित रह गयी। वह उत्तर अत्यंत तीव्रता से लिखती थी जिसमें उसके सोचने-समझने का न तो अवकाश था न कोई आवश्यकता ही थी क्योंकि प्रश्नों के बोलते ही स्वामीजी उत्तर लिखा देते थे। स्वामीजी के उत्तर की विनोदपूर्ण शैली का एक उत्तर उदाहरण के लिए दे रहा हूँ। मेरी पुस्तक **अहल्या** के मुखपृष्ठ का चित्र प्रिंसिपल साहब की पत्नी क्षमाजी ने बनाया था जो कुशल चित्रकार भी हैं। मैंने जब स्वामीजी को पुस्तक भेंट करते हुए पूछा कि चित्र कैसा है तो उन्होंने लिखाया 'बिल्कुल बेकार है।' क्षमाजी उनकी समधिन के समान थी और भारतीय समाज-व्यवस्था में समधी-समधिन से हास-परिहास करना अशिष्टता नहीं मानी जाती। उन्होंने अपनी सुपरिचित परिहास-शैली में ही यह उत्तर लिखाया था। ऐसा उत्तर बालिका अपनी माँ के बनाये चित्र के संबंध में कदापि नहीं सोच सकती थी। उस सुंदर आवरण चित्र को बेकार कहे जाने पर जब मैंने उदास होकर कहा, 'मैं तो क्षमाजी से दूसरी पुस्तक का भी आवरण-चित्र बनवानेवाला था। अब यह विचार मुझे छोड़ देना पड़ेगा' तो स्वामीजी ने तुरत लिखवाया, 'नहीं, जरूर बनवाओ। अगली बार वे विशेष प्रयत्न करेंगी और अच्छा चित्र बनायेंगी।' यह सारी बात क्षमाजी की उपस्थिति में हो रही थी इसलिए मैंने स्वामीजी से अपनी पुस्तक **अहल्या** पर उनकी शुभाशंसा के प्रमाणस्वरूप अपना हस्ताक्षर करने को कहा तो उन्होंने कहा 'तुम्हारी पुस्तक खराब हो जायगी।' मैंने कहा 'नहीं, आपका आशीर्वाद पाकर वह धन्य हो जायगी।' इस पर उस बालिका के माध्यम से उन्होंने अपना हस्ताक्षर कर दिया। मैं उन दिनों और आज भी उनकी आत्मा से अपने उस सुदीर्घ संपर्क के कारण, किसी प्रकार के भी इस विषय में संदेह या शंका की गुंजाइश नहीं पाता था इसलिए मैंने अपनी पुस्तक पर स्वामीजी के उक्त हस्ताक्षर की विशेष छानबीन नहीं की। खेद है कि वह पुस्तक, पता नहीं, कहाँ खो गयी, अन्यथा स्वामीजी की लिखावट से उसके हस्ताक्षर का मिलान कराके नास्तिक से नास्तिक व्यक्ति को भी इस प्रसंग की सत्यता का विश्वास कराया

जा सकता था। मैंने स्वामीजी से सुदीर्घ चर्चा में यह भी अनुभव किया है कि हम प्रेतात्माओं से जो भविष्य की जानकारी लेना चाहते हैं वह उचित नहीं है। रवीद्रंनाथ टेगौर ने भी 1928 के आसपास अपनी मृत पत्नी, पुत्र, तथा अन्य दिवंगत, संबंधियों और मित्रों से संपर्क स्थापित किया था। उनकी उक्त संपर्क की डायरियाँ विश्वभारती में सुरक्षित हैं, जो **रविंद्रनाथेर परलोक वार्ता** के नाम से प्रकाशित हैं। उस पुस्तक का हिंदी अनुवाद 'रवींद्रनाथ की परलोक-वार्ता' के नाम से भी छपा है।

रवींद्रनाथ के, भविष्य जानने के एक प्रश्न के उत्तर में, उनके यहाँ के एक अत्यंत विनोदी व्यक्ति कैलाश मुखर्जी की आत्मा कहती है, 'क्या मृत्यु होने से हम सर्वज्ञ हो गये! जो बात मैंने मर कर जानी है उसको आप जिंदा रहते हुए धोखाधड़ी से जान लेना चाहते हैं? सो नहीं होने का।' यह वार्तालाप उनकी जीवन-स्मृति नामक पुस्तक में दृष्टव्य है।

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि आत्माओं के द्वारा जो हम अपना हित-साधन किया चाहते हैं, वह मेरी समझ में बहुत संभव नहीं है यद्यपि उसके भी कितने ही उदाहरण उपलब्ध हैं।

नारायण स्वामी से मेरा संपर्क 2-3 वर्षों तक प्रिंसिपल साहब की पुत्री के माध्यम से चला। बाद में, अधिकतर गया में रहने के कारण और अपने मित्र नथमल केड़िया के कहने से, मैं इस ओर से उदासीन हो गया। प्रिंसिपल साहब की पुत्री भी बड़ी हो गयी थी। आत्माएं ऐसे ही व्यक्ति को माध्यम बनाती हैं जो अबोध हो या जिसकी आत्मिक शक्ति दुर्बल हो ताकि वह अपने अंदर आत्मा के प्रवेश का प्रतिरोध न कर सके। इसीलिए स्त्रियों को जिस सरलता से आत्माएं माध्यम बना लेती हैं वैसी सरलता से पुरुषों को नहीं बना पातीं।

इस संबंध में मेरे जैसे अनुभव से रवींद्रनाथ टैगोर भी गुजर चुके थे। उनके अनुभव की सारी बातें लिख ली गयी थीं। उसमें किये गये प्रश्न भी इतने सूक्ष्म और गंभीर हैं जो रवींद्रनाथ जैसे महान कवि ही कर सकते थे और उत्तर भी वैसे ही मार्मिक और सटीक हैं। इस विषय में विशेष रुचि रखनेवालों को उक्त पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

इस संबंध में गया के एक वयोवृद्ध वकील मित्र से भी मेरी चर्चा होती थी। उनकी पहली पत्नी की आत्मा उनकी दूसरी पत्नी में प्रवेश करके समय-समय पर उनकी सहायता करती थी। एक बार की घटना है, पहली पत्नी की संतान,

उनका किशोर पुत्र, गया से प्रायः 15-16 मील दूर, टिकारी शहर में बस से जानेवाला था। वह जैसे ही मकान के बाहर जाने को निकला, उनकी पत्नी पर उनकी पूर्वपत्नी की आत्मा आ गयी। वह जोर-जोर से चिल्लाने लगी कि लड़के को मत भेजो। लड़का बाहर सड़क पर जा चुका था। परंतु पत्नी के चिल्लाने से वकील साहब भागे-भागे गये और लड़के को वापस बुला लाये और उसकी यात्रा स्थगित करवा दी। बाद में पता चला कि जिस बस से वह जानेवाला था उसकी दुर्घटना हो गयी और कई व्यक्ति मर गये।

मेरे जन्मदाता पिताजी ने भी मेरी जन्मदात्री माता की मृत्यु के बाद बनारस जाकर इस विषय के विशेषज्ञ बी. डी. ऋषि की मारफत उससे संपर्क किया था।

इस प्रकार की घटनाएं बहुत लोगों के जीवन में घटी होंगी पर मैंने तो केवल उन्हें ही लिखा है जिनका मैंने स्वयं अनुभव किया है या उन व्यक्तियों के मुख से सुना है जिनके कथन पर मुझे कुछ भी संदेह नहीं है। यह भी आम धारणा है कि प्रेतात्मा को वश में करके बहुत से चमत्कार किये जा सकते हैं। उसे लोग कर्णपिशाच-सिद्धि कहते हैं। इस सिद्धि द्वारा या अन्य किसी तांत्रिक सिद्धि द्वारा एक चमत्कार तो मेरे मित्र नथमलजी केड़िया ने अपनी आँखों से देखा था। उसका भी वर्णन यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगा। मेरे आदरणीय मित्र राधेश्यामजी सराफ की गद्दी में प्रति सप्ताह संध्या छः बजे कोलकाता के सुप्रसिद्ध प्रज्ञापुरुष माननीय अक्षयचंदजी शर्मा का उपनिषदों पर प्रवचन होता था। कोलकाता में रहने पर मैं और नथमलजी भी उसमें समय-समय पर जाया करते थे। जिस प्रसंग की मैं चर्चा करने जा रहा हूँ उसमें मैं उपस्थित नहीं था। उस दिन मुझे ट्रेन पकड़नी थी अतः मैं प्रवचन में नहीं जा सका था पर नथमलजी गये थे और उस घटना को उन्होंने स्टेशन पर आकर घंटे भर बाद ही मुझे बताया था। उन्होंने बताया कि उस गोष्ठी में बिहार का एक तांत्रिक आया था जिसने एक चमत्कार दिखाया है। उस तांत्रिक ने कहा कि आप लोग जिस वस्तु की कामना करें वह मैं मँगा दे सकता हूँ। नथमलजी ने उससे कहा कि वह बागबजार की एक खास दुकान से रसगुल्लों का डब्बा मँगा दे। उस तांत्रिक ने बैठक का बंद दरवाजा थोड़ा-सा खुलवा दिया और क्षण मात्र में उस खुले हुए दरवाजे से हवा में उड़ कर आता हुआ रसगुल्ले का डब्बा उपस्थित मंडली के बीच आ गिरा। रसगुल्लों का मूल्य भी उसने उसी अदृश्य शक्ति द्वारा उस दुकान में भिजवा दिया और रसगुल्ले सभी उपस्थित सज्जनों को डब्बा खोलकर खिलाये। इस प्रकार के चमत्कारों का संग्रह किया जाय तो महाग्रंथ तैयार हो जायगा। अत्यंत विश्वस्त होने के कारण ही मैं इसे यहाँ लिख रहा हूँ।

शेक्सपीयर की प्रसिद्ध उक्ति है, **There are more things in heaven and earth than are dreamed of by your philosophy**। मैं समझता हूँ इससे अधिक सच्ची प्रतिक्रिया सृष्टि के रहस्यों के प्रति नहीं हो सकती। न्यूटन ने अपने अंतिम समय में कहा था कि वह तो उस बालक के समान है जिसने समुद्र के किनारे से कुछ रंगीन पत्थर बटोर लिये हैं। समुद्र में जितने अनंत रत्न भरे हैं, उनकी कोई गणना भी नहीं कर सकता। आज विद्युत, वायुयान अंतरिक्ष-यात्रा, कंप्यूटर, रेडियो, टेलीविजन, वीडियो, फैक्स, इंटरनेट आदि को देखकर न्यूटन के इस कथन की सत्यता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है ।और ये तो भौतिक जगत की उपलब्धियाँ है। आध्यात्मिक जगत तो इससे बहुत अधिक सूक्ष्म है तथा अपने भिन्न स्वतंत्र नियमों से संचालित होता है जहाँ भौतिक नियमों से काम नहीं चल सकता। आकर्षण की शक्ति जो समस्त ब्रह्मांड के ग्रह-तारा-मंडलों को चलाती है या विद्युत् शक्ति या चुंबक शक्ति को देखकर उस आध्यात्मिक लोक में प्रवाहित शक्ति का जिसे इशोपनिषद में **जगत्यांजगत्** कहा है, अनुमान भर किया जा सकता है। हमारी धरती के संदर्भ में वह शक्ति निश्चित रूप से काम ही नहीं कर रही है, भौतिक शक्ति की स्वामिनी भी है। नास्तिक और आस्तिक में केवल इतना ही भेद है कि नास्तिक उस शक्ति को अंतिम रूप में जड़ ही मानता है और चेतना को उसका नश्वर विकार मात्र मानता है जब कि आस्तिक उस अंतिम सत्ता को या तो एक मात्र अनश्वर चेतन शक्ति के रूप में स्वीकार करता है अथवा जड़ सत्ता के साथ उसका चिरंतन सहअस्तित्व मानता है। किसी भी अवस्था में किसी शक्ति की शक्तिमत्ता को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। यह तर्क भी दिया जा सकता है कि चेतन-शक्ति, जो निर्विवाद रूप से है, उसका सृजन कोई महाचेतन शक्ति ही कर सकती है। जो भी हो, इस संबंध में मेरा विश्वास या आस्था भगवान कृष्ण के द्वारा बताये गये समाधान में है। मैं समझता हूँ, यह बुद्धि की किसी प्रक्रिया द्वारा हल होनेवाली समस्या नहीं है। इसमें मात्र श्रद्धापूर्वक सिर झुकाने के सिवा दूसरा कोई चारा नहीं है। गीता में दिये गये समाधान को स्वीकार करके ही मन को शांति मिल सकती है।

भगवान ने अंत में कहा है कि सारे विवादों को (धर्मों को) भुलाकर मेरी शरण में आ। अब वह 'माम्' कौन है या किसकी शरण में जाया जाय, यह प्रश्न उठता है। मेरी समझ में श्रद्धा टिकाने के लिए मनुष्य स्वतंत्र है। वह अव्यक्त, अचिंत्य परम सत्ता के किसी भी रूप को अपने आराध्य के रूप में स्वीकार कर

सकता है। वह सत्ता आत्मा के रूप में उसके अंदर भी बैठी है और वह किसी बाहरी सत्ता का अवलंबन न करके स्वयं अपनी आत्म-शक्ति को ही उसका प्रतीक मान ले सकता है। किसी भी अवस्था में, उस शक्ति को उसी प्रकार केंद्रित करने का प्रश्न है जैसे शीशे के माध्यम से सूर्यरश्मियों को एक स्थान पर केंद्रित करके अग्नि प्रकट की जा सकती है। मुख्य प्रश्न पूर्ण श्रद्धा का है। कितने व्यक्तियों को दुर्गाजी ने, हनुमानजी ने, ईसामसीह या अन्य पीर-पैगंबरों ने जो अकल्पित सहायता पहुँचायी है, वह उस परम सत्ता को श्रद्धा या तीव्र इच्छाशक्ति से केंद्रित करने के फलस्वरूप ही संभव हो सका है। चमत्कार करनेवाली शक्ति व्यक्ति के अंदर ही है। उसके प्रति श्रद्धा को किसी भी माध्यम से घनीभूत किया जा सकता है। मैंने अपने ताऊजी गयाप्रसादजी से सुनी हुई राजस्थान के मंडावा गाँव के संत छोटेनाथजी की अलौकिक शक्तियों की चर्चा की है। मेरी माता के संबंध में अपने मामाजी द्वारा सुनी हुई घटना भी लिख चुका हूँ। अपने जन्म के संबंध में तथा अपने बचपन की चमत्कारिक घटना का भी उल्लेख पिछले प्रकरणों में आ चुका है। परंतु अपने बचपन की घटना को छोड़कर अन्य सभी बातें मेरी सुनी हुई हैं जिनका मेरे लिए कितना भी मूल्य हो, पाठकों के लिए वे सुनीसुनाई बातें ही कहीं जायँगी। परंतु अब मैं अपने जीवन की उन घटनाओं का वर्णन करूँगा जिनका मैंने स्वयं अनुभव किया है और जिन्हें मैं संयोग नहीं मानकर अपने जीवन पर किसी कृपालु सत्ता का आशीर्वाद ही मानता हूँ। उन्हें चमत्कार की संज्ञा देना अनुचित नहीं है। पहली घटना 1946 की है परंतु उस घटना की पूर्व-पीठिका के रूप में उसके 5-6 महीने पूर्व की आगे लिखी हुई घटना का उल्लेख आवश्यक है।